नहीं दिखता। दीखना दुर्लभ है।

पहले मैं समझता था कि शरणानन्दजी ने कभी पढ़ाया नहीं, इसलिए उनकी बात सबकी समझ में जल्दी नहीं आती। पर अब दीखता है कि उनकी दृष्टि में सब कुछ वासुदेव ही है फिर वे किसको अज्ञानी, बेसमझ मानें? वे दूसरे को बेसमझ मानेंगे, तभी तो उसे समझायेंगे। उनकी बातों का सार है-अपनी व्यक्तिगत कोई भी वस्तु नहीं है, और एक सत्ता के सिवाय कुछ भी नहीं हैं।

हम कोई बात कहते हैं तो हमें प्रमाण की आवश्यकता रहती है, पर शरणानन्दजी को प्रमाण की आवश्यकता है ही नहीं। उन्होंने जो लिखा है उससे आगे कुछ नहीं है ऐसी मेरी धारणा है। उनकी बातें सब मनुष्य मान सकते हैं। उनकी युक्तियों का किसी से विरोध नहीं है। उन्होंने कहा कि भगवान् क्या है- इसे खुद भगवान् भी नहीं जानते, ऐसे ही शरणानन्दजी क्या हैं-इसे खुद शरणानन्दजी भी नहीं जानते। शरणानन्दजी हमें मिल गये, उनकी पुस्तकें पढ़ने को मिल गयी यह भगवान की हम पर बड़ी कृपा है। (साभार तरुतले भाग 2)

शरणानन्दजी के प्रति अनेकों संतों के (videos) विचार जानने के लिए youtube a/c Santo Ka Khazana देखें।

For Books & Pravachans refer https://www.swamisharnanandji.org

करनाल मानव सेवा संघ **Mo:** 94164 67999 ; 79888 86115

श्री स्वामी शरणानन्दजी

एक अद्वितीय सन्त

-स्वामी रामसुखदासजी

श्री स्वामी शरणानन्द जी महाराज सर्वोच्च कोटि के महात्मा थे। उनके समान कोई दार्शनिक नहीं हुआ। उनकी वाणी विलक्षण है। मैंने अनेक सन्तों की वाणी पढ़ी है, पर शरणानन्दजी की वाणी सबसे विलक्षण है। उनके शब्द बड़े चुने हुए हैं और विशेष अर्थ रखते हैं। उनका विवेचन आदि शंकराचार्यजी से भी तेज है। उनकी साधना विवेक प्रधान होने से उनकी वाणी में विवेक की प्रधानता है। मैं भी उसी का अनुसरण करता हूँ। मैं सत्य का अनुयायी हूँ, व्यक्ति या सम्प्रदाय का नहीं।

शरणानन्दजी की बुद्धि विलक्षण थी। वे कहते थे कि भगवान ने मुझे आवश्यकता से अधिक बुद्धि दे रखी है। उनकी बुद्धि भी तेज थी और पकड़ भी तेज थी। उनमें पचाने की शक्ति भी थी, जैसे वैश्यों में धन पचाने की शक्ति होती है। इसलिए इतना ऊँचा बोध होने पर भी वे प्रकट नहीं करते थे। कारण कि उनकी दृष्टि में सब कुछ वासुदेव ही था। वे किसी बात को व्यक्तिगत नहीं मानते थे।

शरणानन्दजी की वाणी में युक्तियों की, तर्क की प्रधानता है। उनको कोई काट नहीं सकता। मुझे भी तर्क पसन्द है। परन्तु मैं शास्त्रविधि को साथ रखते हुए तर्क करता हूँ। उनकी पुस्तकों में यह बात देखने में आती है कि वे बोध कराना चाहते थे, सिखाना नहीं चाहते थे। उनकी बातें गोली की तरह असर करती है। वे अपनी बात को परोक्ष रूप से कहते थे, जिससे साधक कोरी बातें सीख न जाए। वे 'अभ्यास' न कराकर 'स्वीकार' कराते थे, 'बौद्धिक व्यायाम' न कराकर 'अनुभव' कराते थे।

शरणानन्दजी की भाषा कठिन होने में दो कारण प्रतीत होते है- पहला, पढ़ाने की कला से अनभिज्ञता और दूसरा, गूढ़ भाषा में लिखने से पाठक उसमें अधिक विचार करे, जिससे बात उसकी बुद्धि में बैठ जाए। उन्होंने सोच समझकर ऐसी भाषा का प्रयोग किया है, जिससे पढ़ने वाले को बुद्धि लगानी पड़े। सरल भाषा का प्रयोग करने से पढ़ने वाला बातें सीख जाता है, बुद्धि नहीं लगाता। उनकी बातें बड़ी मार्मिक है। वैसी और जगह नहीं मिलती। मैं सत्य का अनुयायी हूँ, व्यक्ति या सम्प्रदाय का नहीं।

शंकराचार्य, रामानुजाचार्य आदि जितने आचार्य हुए हैं, उन सबसे तथा छहों दर्शनों से शराणानन्दजी का दर्शन तेज है। उनकी बातें, सम्पूर्ण शास्त्रों का अन्तिम तात्पर्य है। अबतक वेदान्त का जितना विवेचन हो चुका है, उससे आगे शरणानन्द जी की वाणी है। शरणानन्द जी कहते थे कि एक नये लोक का निर्माण हो रहा है। क्योंकि अहम् का इतना अभाव पहले किसी दार्शनिक का नहीं हुआ। उन्होंने क्रिया और पदार्थ के आश्रय का सर्वथा त्याग कर दिया था, जो आजतक किसी सन्त ने नहीं किया। इसलिए वे क्रांतिकारी सन्यासी थे। उनका जो इतना विकास हुआ, वह शरणागति के कारण ही हुआ।

कर्ण के पैर, कुन्ती के पैरों से मिलते थे, इसलिए युधिष्ठिर को कर्ण के पैर स्वाभाविक ही प्रिय लगते थे, पर क्यों लगते हैं- इसका उन्हें पता नहीं था। ऐसे ही आरम्भ से मुझे शरणानन्द जी की बातें प्रिय लगती थी। पर इसका कारण पीछे पता चला कि शरणानन्द जी की बात गीता की बात है और गीता मुझे प्रिय लगती है। शरणानन्द जी की बातें मेरी प्रकृति के अनुकूल पड़ती हैं। वैसी प्रकृति मेरी शुरू से रही है।

शरणानन्द जी में यह बिलक्षणता ईश्वर की शरणागति से ही आयी थी। उन्होंने एक बार कहा था कि मेरा स्वभाव है, जिस बात को पकड़ लेता हूँ, उसे फिर छोड़ता नहीं। उन्होंने शरणागति को पकड़ लिया था। भगवान् के शरणागत होने से उनमें ज्ञान का प्रवाह आ गया। उनकी वाणी में स्वतः गीता का तत्व उतर आया। उनकी बातों से गीता का अर्थ खुलता है। उन्होंने जड़-चेतन का जैसा विश्लेषण किया है, वैसा किसी सन्त की वाणी में नहीं मिलता।

शरणानन्दजी के मतानुसार सुखी-दुःखी होना मुर्खता का फल है, प्रारब्ध का फल नहीं। उनके मतानुसार विवेक अनादि है और बुद्धि में आता है। शरणानन्दजी के मतानुसार 'कर्म' सकाम या निष्काम नहीं होता, प्रत्युत 'कर्ता' सकाम या निष्काम होता है। मुझे उनका मत पूरी तरह मान्य है। कर्मयोग की बात मैंने उनसे ही सीखी है। उनकी पुस्तक 'मानव की मांग' पढ़कर मेरी उन पर श्रद्धा हुई।

शरणानन्दी की बाते बड़ी मार्मिक और गहरी है। गहरा विचार किये बिना हर एक के जल्दी समझ में नहीं आती। वो जो बातें कहते हैं, ये छहों दर्शनों में नहीं मिलती। केवल गीता और भागवत् के दशम् स्कन्ध में मिलती है। पर वे भी पहले नहीं दिखती। जब शरणानन्दजी की बातें पढ़ लेते हैं, तब वे गीता और भागवत् में भी दीखने लगती हैं। वे सीधे मूल को पकड़ते है। सीधे कलेजा पकड़ते है। इतना प्रचण्ड ज्ञान होते हुए भी इस विशेषता को उन्होंने अपना नहीं माना।

श्रीशरणानन्द जी महाराज एक क्रान्तिकारी सन्यासी थे। उन्होंने एक बार मुझसे कहा था कि आप मेरे ही भावों का प्रचार करते हैं। उनका कहना सही है। मेरा मानना है कि शरणानन्दजी के समकक्ष कोई नहीं है। शरणानन्दजी के समान मुझे दूसरा कोई